International Journal of Research
Special Issue for UGC Approved Journal-Hindi Papers
Available at https://edupediapublications.org/journals
e-ISSN: 2348-6848
p-ISSN: 2348-795X
Volume 05 Issue 02
January 2018

हिन्दी साहित्य में सामाजिक चेतना का अर्थ व स्वरूप

सुशील कुमार
शोधार्थी
महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय,
रोहतक

सामाजिक चेतना के स्वरूप को समझने के लिए हमें चेतना की परिभाषा जाननी होगी। समाज शास्त्रियों ने, दार्शनिकों ने, और वैज्ञानिकों के चेतना शब्द का प्रयोग विभिन्न सन्दर्भों में किया है।

'चेतना' शब्द बुद्धि ज्ञान, मनोवृत्ति, स्मृति, सुधि, संज्ञा होश आदि अर्थों में प्रयुक्त होता है।"[1] अंग्रेजी में चेतना शब्द का समानार्थी शब्द ''कांसशैनस'' है जो मस्तिष्क की जागृत अवस्था, किसी वस्तु के विषय में ज्ञान, जानकारी अथवा विचार को घोषित करता है। सर विलियम हेमिल्टन ने चेतना को अपरिभाषित बताते हुए कहा है:– ''चेतना की परिभाषा नहीं की जा सकती। हम केवल यह अनुभव कर सकते हैं कि चेतना क्या है लेकिन हम चेतना को जो समझते हैं जैसा अनुभव करते हैं बिना किसी उलझन के दूसरों को नहीं बता सकते।''[2] हिन्दी विश्व कोष के अनुसार चेतना'' जीवधारियों में रहने वाला वह तत्व है जो उन्हें निर्जीव पदार्थों से भिन्न बनाता है। दूसरे शब्दों में हम उसे मनुष्य को जीवन क्रियाओं को चलाने वाला तत्व कह सकते हैं। चेतना स्वयं को और अपने आस पास के वातावरण को समझने तथा उसकी बातों का मूल्यांकन करने की शक्ति का नाम है''[3]। 'हिन्दी साहित्य कोष' के प्रधान संपादक धीरेन्द्र वर्मा ने चेतना के विषय में लिखा है कि ''चेतन मानस की प्रमुख विशेषता चेतना है, अर्थात वस्तुओं, विषयों व्यवहारों का ज्ञान।''[4]

मानक हिन्दी कोष के लेखक रामचन्द्र वर्मा के अनुसार चेतना मन की वह वृत्ति या शक्ति है जिससे जीव या प्राणी को आन्तरिक अनुभूतियों भावों विचारों और ब्राह्म घटनाओं तत्वों या बातों का अनुभव या भाव होता है।[6]

डा0 रमेश कुन्तल मेघ के अनुसारः– चेतना में नाना भांति की मानसिक क्रियाएँ शामिल है जैसे संवेदना, प्रत्यक्षीकरण, अवधारणा, चिन्तन अनुभूति और संकल्प। इस तरह यह मन बुद्धि अहंकार का संश्लेष है। इसे 'चिति' भी कह सकते हैं। चेतन एक चिंतनात्मक अभिवृति का द्योतक है जो व्यक्ति को स्वयं के प्रति तथा विभिन्न कोटि की स्पष्टता तथा जटिलता वाले पर्यायवरण के प्रति जागरूक करता है।''[7]

वैज्ञानिक तथ्यों ने भी पुष्ट कर दिया है कि चेतना मानव मस्तिष्क का वह गुण धर्म है, जिसके द्वारा हमें अपने आस पास की घटनाओं का बोध प्राप्त होता है और हम विश्व को जान पाते हैं। अतः चेतना के लिए न केवल मस्तिष्क अपितु पदार्थ अथवा वस्तुओं का होना भी आवश्यक है जो मस्तिष्क पर प्रभाव डालते हैं।''[8] विभिन्न विद्वानों के चेतना विषयक विचार प्रस्तुत करने के पश्चात संक्षेप में कहा जा सकता है कि चेतना मानव में एक ऐसी प्रक्रिया शक्ति है जिसके बिना मनुष्य कोई काम नहीं कर सकता। यह मनुष्य की वह विशेषता है जो उसे जीवित रखती है और जो उसे अपने विषय में, अपने वातावरण के विषय में ज्ञान कराती हैं। उसी ज्ञान को विचार शक्ति कहा जा सकता है। दूसरे शब्दों में हम कह सकते हैं कि चेतना मानव में उपस्थित वह तत्व है जिसके कारण उसे सभी प्रकार की अनुभूतियां होती है। चेतना से प्रेरित होकर ही मानव देखता, सुनता, समझता और अनेक विषयों पर चिंतन करता है।

समाज की परिकल्पनाः–

समाज व्यक्तियों अथवा परिवारों का एक ऐसा संगठन है जिसमें स्वहित की कामना से तथा समान उददेश्यों एवं आदर्शों की प्राप्ति के लिए व्यक्ति अथवा परिवार स्वेच्छापूर्वक सहयोग देते है।

यह एक समाज शास्त्रीय तथ्य है कि व्यक्ति समाज की ईकाई है। सामाजिक प्राणी होने के नाते वह समाज में रहकर ही अपनी वास्तविक प्रकृति का विकास करता है। वह सामाजिक क्रियाओं के द्वारा अपने को अभिव्यक्त करता है और उसकी चेतना की संरचना भी सामाजिक सम्बन्धों पर निर्भर करती है। सामाजिक सम्बन्धों के माध्यम से वह अपनी चेतना को अभिव्यक्त करता है।

International Journal of Research
Special Issue for UGC Approved Journal-Hindi Papers
Available at https://edupediapublications.org/journals
e-ISSN: 2348-6848
p-ISSN: 2348-795X
Volume 05 Issue 02
January 2018

राईट के अनुसार ''मनुष्य के समूह को समाज नहीं कहा जा सकता, अपितु समूह के अन्तर्गत व्यक्तियों के सम्बन्धों की व्याख्या का नाम समाज है।''[8]

मेकाईवर के अनुसार ''मनुष्यों में जो चलन है, जो कार्यविधियां है, पारस्परिक सहायता की जो प्रवृति है शासन की जो भावना है, मानव व्यवहार के सम्बन्ध में जो स्वतन्त्राऐं व मर्यादायें हैं उनकी व्यवस्था को ही समाज कहते हैं।''[9]

उपर्युक्त परिभाषाओं से स्पष्ट है कि समाज के लिए ये जरूरी है कि अनेक व्यक्ति एक साथ इकटठे रहते हैं और उनमें कुछ ऐसे स्थायी सम्बन्ध हैं कि जो उन्हें एक ईकाई का रूप प्रदान करते हैं तथा ये सम्बन्ध उनकी इच्छा से स्थापित किये गए हैं।

चेतना का समाज से सम्बन्ध बताते हुए हिन्दी विश्वकोषकार ने लिखा है कि:— ''चेतना सामाजिक वातावरण के सम्पर्क से विकसित होती है। वातावरण के प्रभाव से मनुष्य नैतिकता, औचित्य और व्यवहारकुशलता प्राप्त करता है। यह चेतना का विकास कहा जाता है। विकास की चरम सीमा पर चेतना निज स्वतन्त्रता की अनुभूति करती है, वह सामाजिक बातों को प्रभावित कर सकती है और उनसे प्रभावित होती है, परन्तु इस प्रभाव से अपने आपको अलग भी कर सकती है।''[10]

सामाजिक चेतना:—

इस अर्थों के आधार पर सामाजिक चेतना की निम्नलिखित परिभाषा की जा सकती है:—

''पशुओं से भिन्न अर्थात जनसमूह अथवा जनसमाज की ज्ञानात्मिकता मनोवृति का नाम सामाजिक चेतना है।'' डॉ0 रत्नाकर पाण्डेय के अनुसार:— ''सामाजिक चेतना अभावात्मक या नकारात्मक नहीं होती। यह प्रत्येक व्यक्ति में विद्यमान रहती है, परन्तु रूढ़ि, अशिक्षा, अभावों के कारण दुष्प्रभावित व कुण्ठित हो जाती है। इस दुष्प्रभाव से मुक्त रहना और कुण्ठा को अपनी अन्ततृप्ति से तिरोहित करना ही सामाजिक चेतना है।''[11]

International Journal of Research
Special Issue for UGC Approved Journal-Hindi Papers
Available at https://edupediapublications.org/journals
e-ISSN: 2348-6848
p-ISSN: 2348-795X
Volume 05 Issue 02
January 2018

मार्क्स तथा एंगिल्स के अनुसार ''आर्थिक व्यवस्था ही वह मूलभूत आधार है जिस पर राजनैतिक तथा सांस्कृतिक चेतना निर्भर करती है, तथा उसी के अनुरुप सामाजिक चेतना के विविध रूप निर्मित होते हैं। तात्पर्य यह है कि मनुष्यों की चेतना उनके अस्तित्व का निर्धारण नहीं करती, इसके विपरीत उनका सामाजिक अस्तित्व उनकी चेतना को निर्धारित करता है।'' डॉ0 सारस्वत के अनुसारः— ''सामाजिक चेतना मानवीय संज्ञान का वह रूप है जो लौकिक स्तर पर हमारे विवेक को समाज के विविध पक्षों से जोड़ता है और अलौकिक स्तर पर चित्ति के रूप में अभिज्ञात होकर वैश्विक संविद या आत्म चैतन्य के रूप में विवेचित होता है। शास्त्रीय शब्दावली में चेतना जहाँ चित्ति अथा संविद् में परिगृहीत है वहाँ सामान्य शब्दावली में वह विवेक के विभिन्न स्तरों पर कार्य अकार्य का बोध कराने वाली शक्ति भी है।''[12]

इन सब परिभाषाओं के आधार पर कहा जा सकता है कि आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक राजनैतिक, धार्मिक, राष्ट्रीय तथा समाज में प्रचलित परम्परागत मूल्यों के परस्पर संवाद से जो नया बोध जाग्रह होता है उसकी समझ और विश्लेष्णात्मक शक्ति का नाम सामाजिक चेतना है।

सामाजिक चेतना केवल समझ ही नहीं देती बल्कि वह सामाजिक उद्देश्यों को पूरा करने के लिए आगे बढ़ने की प्रेरणा भी देती है। हमारे कुण्ठा से ग्रस्त, जीवन में आशा रोशनी व विश्वास जागृत कर उन्हें एक सूत्र में पिरोना सामाजिक चेतना का कार्य है।

संक्षेप में सामाजिक चेतना न केवल अर्थव्यवस्था पर निर्भर करती है अपितु विकसित होते हुए समाज में आर्थिक ढांचे को भी प्रभावित करती है। वस्तुतः सामाजिक चेतना अत्यंत जटिल है। और उसे केवल अर्थव्यवस्था का ही पर्याय नहीं माना जा सकता। व्यक्ति की सामाजिक चेतना विकासशील है तथा प्रत्येक युग के साथ बदलती रहती है।

चेतना के विविध रूपः—

समाज के विभिन्न संदर्भो में व्यक्ति परिवार तथा उसके विभिन्न उच्च, मध्य, निम्न आदि वर्ग तथा सामाजिक राजनीतिक, आर्थिक, एवं अन्य सांस्कृतिक

बोध का स्वरूप विवेचित किया जाता है। विभिन्न संदर्भों में विवेचित होने पर ही यह बोध विभिन्न वर्गीय चेतना कहलाता है। अतः इस चेतना के अन्तर्गत यह बोध सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक एवं सांस्कृतिक हो जाएंगे।

1. **सामाजिक चेतनाः—** सामाजिक चेतना के क्षेत्र में हम समाज के अन्तर्गत मुख्यतः व्यक्ति (स्त्री—पुरुष), परिवार तथा समाज के विभिन्न उच्च, मध्य एवं निम्न वर्गों तक ही परिसीमित नहीं।'' यहीं हम उस समय के समाज विशेषकर हिन्दू एवं मुस्लिम समाज को चित्रित करेंगे। इसके साथ ही हम उस समाज में रहने वाले विभिन्न वर्गों को जो उच्च वर्ग, मध्य वर्ग, निम्न वर्ग को भी चित्रित करेंगे। इन वर्गों में आपस में कैसे संबंध थे यह भी देखेंगे। व्यक्ति चेतना के अंतर्गत हम नारी को चित्रित करेंगे तथा देखेंगे कि क्या नारी अपने अधिकारों के प्रति, अपनी स्थिति के प्रति जागरूक थी? और उसकी स्थिति कैसी थी? आदि।
2. **राजनीतिक चेतनाः—** राजनीतिक चेतना को हम अलग से विवेचित नहीं करेंगे क्योंकि यह हमारा विषय नहीं है। हमारा अध्ययन सामाजिक चेतना तक ही सीमित रहेगा।
3. **आर्थिक चेतनाः—** आर्थिक चेतना के अन्तर्गत उस समय के समाज की तथा उसमें रहने वाले लोगों की आर्थिक दशा को चित्रित करेंगे तथा देखेंगे कि उस समाज क लोग किस तरह अपना जीवन व्यतीत कर रहे थे। यहाँ आर्थिक चेतना से अभिप्रायः व्यापक परिपेक्ष्य में ग्रहण नहीं किया गया है। क्योंकि यह हमारे विषय से वैसे अलग रूप में पड़ता है। तत्कालीन समाज में धर्म का क्या स्वरूप था, यह भी विवेचित किया गया है क्योंकि यह समाज की वर्गीय चेतना में विद्यमान तत्व था। अतः इसे पुस्तक के व्यापक अध्ययन के हित में ग्रहण किया गया है। वैसे मुख्यतः सामाजिक चेतना में हमने व्यक्ति (स्त्री—पुरुष), परिवार, उच्च, मध्य, निम्न वर्ग को तथा उसकी दशा को ही चित्रित किया है।

e-ISSN: 2348-6848
p-ISSN: 2348-795X
Volume 05 Issue 02
January 2018

संदर्भ

1. नलंदा विशाल शब्द सागर – पृ0 388 (1954)
2. डॉ0 रत्नाकर पाण्डेय – हिन्दी साहित्य सामाजिक चेतना, पृ0 160
3. हिन्दी विश्व कोष खण्ड 4, पृ0 282
4. हिन्दी साहित्य कोष 1 सं0 धीरेन्द्र वर्मा, पृ0 316
5. मानक हिन्दी कोष : खण्ड दूसरा : रामचन्द्र वर्मा, पृ0 274
6. रमेश कुन्तल, 'मेघ' (आलोचना) जनवरी–मार्च, 1976
7. अर्चना जैन, प्रेमचंद के निबंध साहित्य, पृ0
8. डॉ0 उर्मिला गम्भीर– प्रतापनारायण श्रीवास्तव के उपन्यास, 15–16 का समाज शास्त्रीय अध्ययन, पृ0 38
9. हिन्दी शब्द कोश, पृ0 283
10. हिन्दी विश्व कोष, खण्ड 4, पृ0 सं0 312
11. डॉ0 रत्नाकर पाण्डेय – हिन्दी साहित्य सामाजिक चेतना, पृ0 168
12. डॉ0 सरसस्वत द्वारा पढ़ा गया प्रपत्र